Review Of Research
Vol. 3 | Issue. 9 | June. 2014
Impact Factor : 2.1002 (UIF)
ISSN:-2249-894X
Available online at www.lbp.world

ORIGINAL ARTICLE

भारतीय धर्म–दर्शन–परम्परा में गाँधी धर्म दर्शन : एक अध्ययन

डॉ. नन्दकिशोर प्रसाद यादव[1] , दिलीप कुमार ठाकुर[2]
[1]व्याख्याता, दर्शनशास्त्र विभाग, स०अ०ए० डिग्री कॉलेज, जमुई.
[2]शोध–छात्र, विश्वविद्यालय, गृह विज्ञान विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा.

सारांश :

गांधीजी ने सत्य को ही ईश्वर माना। उनके अनुसार सत्य ही वह तत्व है, जो संसार में सर्वत्र व्याप्त है। सत्य के अतिरिक्त उनके निकट ईश्वर की भी कोई और भाषा नहीं है। सृष्टि में सृष्टा, नर में नारायण और पदार्थ में सत्य देखने की उनकी साधना से ही उनकी राजनीति, समाजनीति निष्पन्न हुई। राजनीति आध्यात्मिकता से अनुप्राणित हुई, स्थूल कर्म में सत्यज्ञान की प्रतिष्ठा हुई और घोर घमासान में प्रेम और शांति के आनंद को वे अक्षुण्ण रख सके। गांधीजी के अनुसार 'अहिंसा एक उच्चकोटि की सक्रिय शक्ति है। यह हमारे अंदर बैठे ईश्वर का बल है। यह आत्मबल है। सत्य के साथ अहिंसा को अपनाकर चलने से आप सारी दुनिया को अपने कदमों में झुका सकते हो। इसके लिए किसी बाहरी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती। अपूर्ण मानव उस संपूर्ण तत्व को हृदयंगम नहीं कर सकता। असलियत में नम्रता के बिना अहिंसा असंभव है।'

प्रस्तावना :

गाँधी के अनुसार 'धर्म से मेरा मतलब उस मूल धर्म से है, जो हिंदू धर्म से कहीं उच्चतर है। जो मनुष्य के स्वभाव तक को परिवर्तित कर देता है। जो हमें भीतर के सत्य से अटूट रूप से बांध देता है। जो हमें निरंतर अधिक शुद्ध और पवित्र बनाता है। वह मनुष्य की प्रकृति का ऐसा स्थायी तत्व है जो अपनी संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार रहता है। धर्म एक पूर्णतया वैयक्तिक मामला है, जिसका आशय विश्व के नैतिक शासन से है। यह अगोचर है, इसलिए अवास्तविक भी नहीं। यह मनुष्य में समरसता, समस्वरता लाता है। सभी धर्मों का ध्येय शांति ही है। अहिंसा धर्म है और सच यह है कि मेरा सरोकार 'शैतानी सभ्यता' या 'अधर्म' के स्थान पर धर्म की स्थापना करना है।'

निरूसंदेह देश और समाज उन्हीं को याद रखता है जो धर्म को उदार और अधिक व्यापक बनाने की दिशा में प्रयास करते हैं। सौहाद्र, उदारता और विवेक हर धर्म के स्थायित्व में अहम भूमिका निभाते हैं और परंपरा, धर्म, उसकी आलोचना या फिर पहनावे के नाम पर फतवा या विवाद धर्म को लेकर आधुनिक समाज के द्वंद्व के प्रमाण हैं। आज जरूरत इस बात की है कि हम धर्म को गांधी के सपनों का, सबके मंगल का, समाज सुधार का, शांति का आधार माना जाये।

Review Of Research
Vol. 3 | Issue. 9 | June. 2014
Impact Factor : 2.1002 (UIF)
ISSN:-2249-894X Available online at www.lbp.world

बीसवीं शताब्दी के यथार्थ को रेखांकित करते हुए हिन्दी के एक प्रतिष्ठित लेखक श्रीकान्त वर्मा ने बहुत विचारणीय बात कही है –

''18वीं शताब्दी में मनुष्यता ने एक दूसरा ही रास्ता पकड़ लिया। यह रास्ता था विज्ञान और टेक्नोलॉजी का। इस रास्ते पर चलती हुई मनुष्यता इन ढाई सौ वर्षों में जिस जगह पहुँची है, क्या वही उसका गन्तव्य था? यह सवाल स्वयं मनुष्यता के सामने मुँह बाये खड़ा है। युद्ध का भय इंसान को जकड़े हुए है, परमाणु संहार का खतरा उसकी गरदन पर डियॉक्लीज की तलवार की तरह झूल रहा है, समृद्ध समाजों में दिशाहीनता है, गरीब देशों में भुखमरी है, काले और गोरे का भेद आज पहले से अधिक तीव्र है, ऊर्जा के स्रोत सूख चले हैं, क्रांतियाँ वायदे पूरे नहीं कर सकी हैं, विचारधाराएँ निष्प्राण जान पड़ती हैं।''1

वास्तव में गाँधी की जीवन–प्रणाली और कर्मचेतना को जब हम एक विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य से एक जाति, समुदाय या राष्ट्र को मात्र राजनीतिक या आर्थिक तौर पर मुक्ति दिलाने के सफल प्रयास के रूप में देखते हैं, तो यह भारतीय परम्परा से अनुप्राणित उनके महान् व्यक्तित्व और उनके अभिप्राय का असंगत परिसीमन तो कर ही रहे होते हैं; उनके जीवन के उन बड़े सरोकारों को भी अनदेखा करते हैं, जिनकी सिद्धि से एक विराट सांस्कृतिक चेतना का निर्माण किया जा सकता है और जिसका अनुभव उन्होंने स्वयं अपने तथा हजारों–लाखों भक्तों, प्रशंसकों व अनुयायियों के स्तर पर पाया था। इस सहज अर्थ में भी गाँधी मात्र एक स्वातंर्त्य वीर से अधिक एक सांस्कृतिक योद्धा ठहरते हैं; जो जाति, वर्ग, नस्ल, सप्रदाय, रंग, क्षेत्र, राष्ट्रीय परिधि, ऊँच–नीच वाद और विधर्म से परे मानव–समाज की रचना के लिए सन्नद्ध और प्रतिश्रुत खड़े दिखायी देते हैं।

सहस्र वर्षों से भिन्न–भिन्न आक्रान्ताओं से पराधीन और बाद में ब्रिटिश साम्राज्य के साये तले घुट–घुट कर साँस ले रहे भारतीय जनसमूह को स्वतंत्रता के उन्मुक्त आकाश की छवि दिखाकर उसे पाने की आकांक्षा और तदनुरूप चेष्टाएँ गाँधी से पूर्व राजा राममोहन राय, तिलक और गोखले आदि और तत्पश्चात् अनेक पुण्य हाथों में सम्पन्न हुईं, किन्तु भारत–सहित दक्षिण अफ्रीकी गुलाम जनों में स्वतंत्रता का शंखनाद करनेवाले गाँधी का लक्ष्य स्वतंत्रता प्रथमतः तो था, किन्तु अंतिम नहीं। वे स्वातंर्त्य–लक्ष्य से अधिक आगे 'आत्म स्वातंर्त्य' की कामना से आपादमस्तक पूरित थे। आत्म स्वातंर्त्य का यह मंत्र उन्हें पौराणिक, ऐतिहासिक और आधुनिक भारत की वरद् परम्परा से प्राप्त हुआ था। प्राचीन काल में राम, कृष्ण, ऐतिहासिक बुद्ध और महावीर तथा आधुनिक स्वामी विवेकानंद इस परम्परा के प्रज्ञा–पुरुष हैं। दुनिया का विज्ञ–समुदाय गाँधी को इस परम्परा की आधुनिक कड़ी मानता है। दरअसल धन, अस्त्र–शस्त्र और चातुर्य पर टिके विशाल अंग्रेजी साम्राज्यवाद की बुनियाद हिलाने का कार्य गाँधीजी ने जिन अमोघ शस्त्रों–सत्य व अहिंसा–से लिया, उन्होंने भारतीय दर्शन और जीवन–परम्परा से ही प्राप्त किये थे। वही भारतीय दर्शन, जिसमें मनुष्य मन के अन्वेषण में शताब्दियों की ऋषि–परम्परा की साधना से अर्जित तत्त्वों की भूरि–भूरि प्रशंसा मैक्समूलर से लेकर टॉयनबी और ऑक्टीवियो पॉज तक करते आ रहे हैं।

गाँधी की कर्म–चेतना में भारतीय परम्परा को रूढ़िवादी दृष्टि से देखने में न सिर्फ निराशा हाथ लगेगी, बल्कि मामला गड्डमड्ड भी हो जाएगा, कुछ उसी तरह जैसे गाँधी जी द्वारा प्रदत्त समाज के सबसे दलित और अस्पृश्य वर्ग को 'हरिजन' जैसे उच्च अभिप्राय वाले शब्द में आज उस वर्ग के कथित स्वयंभू चिन्तकों द्वारा गाँधी जी की बदनीयती ढूँढ़ी जाती है और कुतर्क रचे जाते हैं और फिर देश–काल, समाज के परिप्रेक्ष्य में परम्परा, आचार–विचार के रूप में हवा–पानी की भाँति अस्तित्वमान रहते हुए भी भौतिक पदार्थों और कला–उपादानों की भाँति मूर्त नहीं होती। वह सूक्ष्म, गत्यात्मक और युग–व्यक्तित्व सर्जित मूल्यों से गढ़ी जाकर युगानुरूप और अद्यतन होती है। उसकी जड़ें देश–समाज के नाभि–नाल में होकर भी नित–नूतन और पल्लवित होती रहती हैं। भारतीय परम्परा की

Review Of Research
Vol. 3 | Issue. 9 | June. 2014
Impact Factor : 2.1002 (UIF)
ISSN:-2249-894X Available online at www.lbp.world

अन्तश्चेतना को गाँधी के जीवन–नियमन में समझने के लिए दर्शनशास्त्री प्रो. गोविन्दचन्द्र पाण्डे का यह कथन आधारभूत सहायता करता है, जिसमें वे कहते हैं–

''संस्कृति विचारशील व्यक्ति के समक्ष मूल्यों को उपादानवत् प्रस्तुत करती है, जिसके आधार पर वह स्वयं अपने मूल्य गढ़ता है। इन व्यक्ति–कल्पित मूल्यों में और परम्परागत मूल्यों में बहुधा सादृश्य होते हुए भी सदा या सर्वथा नहीं होता। यही परम्परा के निरन्तर बदलते रहने का एक कारण है।...वस्तुतः परम्परा एकविध या समञ्जस होती भी नहीं है। वह गंगा की धारा के समान सभी तीर्थों और प्रदेशों का प्रभाव अपने में लिये रहती है। मूल्य–विचार के लिए उसका महत्त्व कुछ उस प्रकार का है, जैसा उत्पादन के प्रसंग में कच्चे माल या खनिज पदार्थ का।''2

परम्परा का मूल प्रवाह अविच्छिन्न बना रहता है और उसमें काल, परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुरूप और समय–समय पर जन्म लेनेवाली व्यक्ति–प्रतिभा के अनुकूल नये–नये मूल्य जन्म लेते और जुड़ते चले जाते हैं। देखा जा सकता है कि परम्परा के जो मूल्य मध्यकालीन समाज में कोरे आध्यात्मिक ज्ञान व मोक्ष के उपाय के रूप में विद्यमान थे, आधुनिक युग में उनमें मानवतावादी आचरण की क्रियात्मकता समा गयी। विद्वान आचार्य की उक्ति साक्ष्य के रूप में दृष्टव्य है–

''19वीं शताब्दी में कोरे ज्ञान और कोरी भावुकता के स्थान पर सेवा और प्रेम का मानवतावादी आदर्श क्रमशः प्रस्फुटित हुआ। राममोहन राय से तिलक, गाँधी और अरविन्द तक बार–बार यह प्रयत्न किया गया है कि उपनिषदों और गीता की परम्परा में कर्म का निरूस्वार्थ मानव–सेवा के रूप में प्रतिपादन किया जाये।''3

भारतीय परम्परा के शाश्वत मूल्यों, जिनकी ऊष्मा पराधीनता की लम्बी अवसाद– रूपी राख में दब गयी थी, गाँधी ने अपने निपुण और वयस्क हाथों से अलग किया। ढँके–मुँदे मूल्य–ताप को अनावृत्त किया, उसमें बड़े जतन से कर्म–संस्कार और आचरण की समिधा देकर पुनरू प्रज्ज्वलित कर उसके ताप और प्रभा से लोगों का साक्षात्कार कराया। यह अपनी ही नाभि से कस्तूरी पाने जैसा सयाना प्रयत्न था। गाँधी कभी भी इस भ्रम में नहीं पड़े और न ही आत्म–मुग्ध होकर संशयात्मा के शिकार हुए कि उन्होंने लोगों के सामने कोई नयी बात रखी है, कि वे समाज को कोई नया मूल्य दे रहे हैं, कि वे अपनी ओर से कुछ नया जोड़ रहे हैं। वे जीवन–भर आत्यन्तिक विनम्र भाव से यही कहते–दोहराते रहे कि–

''...मुझे वे बातें खोज कर निकालनी पड़ती हैं, जो पहले से ही मौजूद हैं। चमत्कार तथा आँखों को चकाचौंध करने वाले जादूगर को संसार में हमेशा ही सम्मान मिलता है, पर पुरानी चीजों की उलट–पुलट करने वाले मुझ जैसे व्यक्ति को किसी कोने में स्थान प्राप्त करने के लिए भी बड़ी मेहनत करनी पड़ती है।''4

''मैंने ऐसा कौन–सा नया तत्त्व–ज्ञान लोगों को बताया। इतना जरूर है कि शाश्वत सत्य के मूल्य अपने दैनिक जीवन पर तथा भविष्य में पैदा होने वाले प्रश्नों पर लागू करने का मैं प्रयत्न करता रहा हूँ।''5 बाल्यावस्था के संस्कार–बीज जीवन–वृत्ति का स्थायी भाव बनकर कैसे जीवन को नकारात्मक या सकारात्मक दिशा में प्रेरित किये रहते हैं, गाँधी जी का जीवन–वृत्त इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हमारी परम्परा में सन्तति के जन्म से पूर्व जो गर्भाधान और पुंसवन संस्कार और निर्धारित मर्यादाएँ आदि हैं, उनके पालन से भविष्यत् श्रेष्ठ नागरिक के निर्माण की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। बहरहाल, गाँधी की बाल्यावस्था में मासूम आँखों से देखे गये सत्य नायक हरिश्चन्द्र, पितृभक्त श्रवण और आस्तिक माँ की तपश्चर्या के दृश्य अक्स बनकर जीवन में बड़े सरोकारों वाले निर्णयों तक में आधार–भूमि बनते रहे हैं।

गाँधीजी के जीवन–नियामक तत्त्वों को समझने के लिए उनके लिखे न तो मोटे–मोटे ग्रन्थ मिलेंगे, न ही प्रायोजित प्रवचन। उनके जीवन–सूत्रों को समझने के लिए, जैसा वे स्वयं कहते

हैं–'आमार जीवनी आमार बानी' अर्थात् 'मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है'। गाँधीजी ने यह वाक्य अपने एक महीने के कोलकाता–प्रवास के बाद, दिल्ली रवाना होने से पूर्व अपनी हस्तलिपि में बांग्ला में लिखा था। यह तथ्य डी. जी. तेन्दुलकर कृत महात्मा (खण्ड– 8) पुस्तक से उद्धृत है। उनकी जीवन–क्रियाओं, निर्णयें तथा व्यवहार–पद्धति को समझना होगा। अल्पकाल के लिए ही सही, वकील के तौर पर अदालत में प्रस्तुत उनके तर्कों, ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधियों से हुई उनकी वार्ताओं, तमाम लोगों को लिखे उनके पत्र के मसौदों और यहाँ तक कि सामान्य और विशिष्ट जनों से उनके वार्तालाप भी उन्हें समझने में मदद देते हैं।

उनका जीवन योजनाबद्ध नहीं था। पराधीन व्यक्ति–राष्ट्र का जीवन योजनाबद्ध हो भी नहीं सकता। किन्तु वह राष्ट्रीय परम्परा और मूल्य–सम्बद्ध था। अतः लन्दन से अफ्रीका लौटते समय यात्रा में ही उन्होंने 'हिन्द–स्वराज्य' पुस्तक लिख डाली। ध्यान देने की बात यह है कि इसे उन्होंने 'गुजराती' में लिखा। लघुकाय इस पुस्तक में शत्रु भाव की जगह प्रेम, अत्याचार की जगह सहिष्णुता और भौतिकता की तुलना में आध्यात्मिक समृद्धि का सन्देश है।

गाँधी के व्यक्तित्व में अध्यात्म और सांसारिक दो पृथक–पृथक खण्ड नहीं हैं। सांसारिक समस्याओं को छल, कपट और धोखाधड़ी से हल कर लें और फिर कमरे के कपाट बन्द कर राम नाम की अभ्यर्थना कर लें। ऐसा दोहरा आचरण वहाँ नहीं है। उनका अध्यात्म तो उनके जीवन–संग्राम की प्रेरणा और प्रभा बनकर प्रतिपल उनके साथ है। धर्म यहाँ जीवन–नियमन की धारणा बनकर जब–तब संशयग्रस्त होते मन को राह दिखा रहा है, ऊष्मा भर रहा है। इसीलिए अध्यात्म तत्त्व–सत्य, अहिंसा–प्रेम के मार्ग से विदेशी दासता से राजनीतिक मुक्ति और आर्थिक स्वातंत्र्य पाने का लक्ष्य उन्होंने ठाना था। इस तरह उनके लक्ष्योन्मुख 'स्वराज' के चार पाये थे– स्वयं गाँधी के शब्दों में ''स्वराज्य के बारे में मेरी कल्पना इस प्रकार है। इस स्वराज्य के दो पहलू हैं। विदेशियों की गुलामी से यदि एक भी कोण बिगड़ जाये, तो समझ लीजिए कि वह विद्रूप हो गया है।''6

निष्कर्ष :

उक्त विश्लेषण से हमारी धारणा की पुष्टि होती है कि बीती शताब्दी के इस श्रेष्ठ विश्व–मानव (अमेरिका के एक नामधारी सर्वेक्षण संस्थान ने एक जनमत संग्रह में उन्हें श्रेष्ठ मानव निरूपित किया है।) की संचालिका शक्ति भारतीय परम्परा और जीवन–मूल्यों के नाभिनाल से ही रस ग्रहण करती रही है। भारतीय धर्म–दर्शन–परम्परा में गाँधी धर्म दर्शन के लिए विद्वान ठीक कहते हैं कि– इस महान भारतीय परम्परा के, इस रूप में, महात्मा गाँधी अन्तिम प्रतीक पुरुष हैं, जिनमें पूरी परम्परा अपनी विविधता उदात्तता एवं जिजीविषा के साथ अपने विराट रूप में अभिव्यक्त हुई है। दरअसल गाँधी की जीवन–यात्रा को देखना भारतीय परम्परा का पुनरावलोकन करना है।

संदर्भ संकेत :

1. श्रीकान्त वर्मा : बीसवीं शताब्दी के अँधेरे में–भूमिका से
2. गोविन्दचन्द्र पाण्डे : मूल्य मीमांसा, पृष्ठ 71
3. गोविन्दचन्द्र पाण्डे : वही, पृष्ठ 8
4. न. र. अभ्यंकर : राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, पृष्ठ 94
5. न. र. अभ्यंकर : वही, पृष्ठ 167
6. न. र. अभ्यंकर : राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, पृष्ठ 179